P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-11* (Supplementary Issue) July- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

मारवाड़ के राठौड़ों का प्रशासनिक संगठन (1707–1843 ईस्वी सन्)

महेश कुमार दायमा
असिस्टेण्ट प्रोफेसर,
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

सारांश

मारवाड़ के प्रशासन पर भौगोलिक प्रभाव व मुगलों की अधीनता ने इस राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित किया है। 1818 ईस्वी में ब्रिटिश अधीनता ने भी प्रशासन पर आमूलचूल परिवर्तन किये लेकिन मारवाड़ की प्रशासनिक व्यवस्था मूल रूप से भारतीय ही बनी रही।

सम्पूर्ण प्रशासनतंत्र महाराजा व पट्टेदारी व्यवस्था पर आधारित था। मारवाड़ नरेशों का सम्पर्क मुगलों से होने के उपरान्त अपने राज्य में मुगल प्रशासन के कतिपय पदों के नाम उनके अनुसार प्रचलित किये और कई नए विभागों का सृजन भी किया। 1843 ईस्वी तक मारवाड़ का प्रशासन मध्यकालीन परम्पराओं व पुरातन पद्धतियों से चलता रहा। इन परम्परागत व्यवस्थाओं को सुशासन का नया जामा पहिनाने का श्रेय का ढोंग रचने का अवसर ब्रिटिश सत्ता को 1818 ईस्वी की सन्धि ने सुलभ करा दिया। ब्रिटिश संरक्षण पाने के उपरांत राठौड़ नरेशों की निरंकुशता बढ़ने लगी और वे जनहित की उपेक्षा करने लगे। राजपद की गरिमा पतोन्मुख होने लगी। अंग्रेजों ने मारवाड़ राज्य की गरिमा को धराशायी कर शीघ्र ही अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर ली। पंचकुल व जातिय पंचायत किसी हद तक ग्रामों में निष्पक्ष न्याय देने में सहयोगी के रूप में कार्यरत रही। कालांतर में प्राचीन व मध्ययुगीन राठौड़ों के शौर्य का युग शोषण के युग में बदल गया।

मुख्य शब्द : घरबाद, ताजीम, कुरब, कारकुन, सिरोपाव, राजवी, पंचकुल, कंदोई की लाग, तातेड़खाना।

प्रस्तावना

संस्कृत शिलालेखों, पुस्तकों में जोधपुर राज्य का नाम मरू, मरूस्थल, मरूस्थली, मरूमेदिनी, मरूमंडल, मारव, मरूदेश और मरूकांतार मिलते हैं जिसका भावार्थ रेगिस्तान या निर्जल देश होता है और भाषा में उसको मारवाड़ और मुरधर (मरूधरा) कहते हैं। जब से जोधपुर नगर बसा (13 मई 1459 ईस्वी) तब से वह जोधपुर राज्य के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

मरू और मरूकांतार शब्द राजपूताना के सारे रेगिस्तान के लिए प्रयुक्त होते हैं। मारवाड़ में 'वाड़' का अर्थ 'रक्षक' है, अतः मारवाड़ (मरूवाड़) का अर्थ रेगिस्तान से रक्षित देश है। प्राचीन काल में जोधपुर राज्य के केवल पश्चिमी भाग को ही पश्चिमी रेगिस्तान की मरूभूमि में समावेश किया जाता था। राज्य के उत्तरी हिस्से की गणना 'जांगल देश' में होती थी जिसकी राजधानी अहिच्छत्रपुर (नागौर) थी। भीनमाल पर गुर्जरों का अधिकार हो जाने के उपरांत इस राज्य का पूर्वी हिस्सा 'गुर्जरात्रा' (गुजरात) कहलाने लगा। चौहानों के समय नागौर, सांभर आदि प्रदेश 'सपादलक्ष' नाम से लोकप्रचलित हुए। कुछ लोग 'मरू' और 'माड़' देशों के नामों के मिलने से 'मारवाड़' नाम की उत्पत्ति होना अनुमान करते हैं। 'माड' जैसलमेर के पूर्वी भाग का नाम है और यह मरूदेश के पश्चिमी भाग से मिला हुआ है, कालान्तर में यही 'माड़' शब्द 'वाड' के रूप में परिवर्तन हो गया है।

मारवाड़, मरूवाड[1] शब्द का अपभ्रंश है। इसका पौराणिक नाम मरूस्थली या मरूस्थान 'मृत्यु का क्षेत्र' है। इसे मरूदेश भी कहते हैं, जिसे प्रारम्भिक मुस्लिम लेखकों ने 'मारदेस' लिखा है। चारण कवियों ने इसका नाम कई बार मोरधर लिखा है, जो मरूदेश का पर्याय है। इस शब्द का प्राचीन और समुचित तात्पर्य उस संपूर्ण मरूस्थल प्रदेश से है, जो सतलज नदी से अरब सागर तक फैला हुआ है।

अध्ययन का उद्देश्य

मारवाड़ के मध्यकालीन प्रशासनिक संगठन के सैद्धान्तिक, संरचनात्मक व संस्थागत प्रक्रियाओं का किया गया है। मारवाड़ प्रशासन में राजतंत्रात्मक व्यवस्था के दर्शन, सिद्धान्त और व्यवहार को स्पष्ट करते हुए विधिक प्रावधानों का उल्लेख किया गया है।

मारवाड़ के मध्यकालीन प्रशासनिक संगठन पर नूतन सामग्री को समाविष्ट किया गया है जिससे सम्पूर्ण प्रशासनिक संगठन से सम्बन्धित सामग्री का एक साथ विवेचन उपलब्ध हो सके। इसी अभाव की पूर्ति की दिशा में एक प्रयास है।

राठौड़ नाम की उत्पत्ति

राठोड़ शब्द केवल भाषा में ही प्रचलित है। संस्कृत पुस्तकों, शिलालेखों और दानपत्रों में उसके लिए 'राष्ट्रकूट' शब्द मिलता है। प्राकृत शब्दों की उत्पत्ति के नियमानुसार 'राष्ट्रकूट' शब्द का प्राकृत रूप 'रट्ठऊड़' होता है, जिससे 'राठउड़' या 'राठोड' शब्द बनता है, जैसे 'चित्रकूट' से 'चित्तऊड़' और उससे 'चित्तौड़' या 'चीतोड़' बनता है। राष्ट्रकूट के स्थान पर कहीं–कहीं 'राष्ट्रवर्य' शब्द भी मिलता है, जिससे 'राठवड़' शब्द बनता है। राष्ट्रकूट और राष्ट्रवर्य दोनों का अर्थ एक ही है क्योंकि राष्ट्रकूट का अर्थ 'राष्ट्र' जाति या वंश का शिरोमणि है और राष्ट्रवर्य का अर्थ 'राष्ट्र' जाति या वंश में श्रेष्ठ है कालान्तर में राष्ट्रकूट को राजपूताना के लेखकों, चारण कवियों द्वारा राठोड़ उच्चारित किया जाने लगा।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात और मुंहणोत नैणसी री विगत से मुगलकाल के पूर्व के मारवाड़ के प्रशासनिक संगठन पर कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं दिखता है।[2] मध्यकाल में राठौड़ जाति को ही इस बात का श्रेय है कि उन्होंने बंजर, रेतीले, अनउपजाऊ क्षेत्र पर अपना अधिकार करके प्रशासकीय एकता के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक सुदृढ़ केन्द्रीय सत्ता को स्थापित किया, जो स्थानीय परंपराओं को ध्यान में रखते हुए स्थापित की गई।[3] मुगलशाही मनसब स्वीकार करने से पूर्व, मारवाड़ के शासक अपने राज्य में पूर्णरूप से स्वतंत्र थे परन्तु मुगल अधीनता स्वीकार कर लेने के बाद मारवाड़ के शासकों को दोहरा कार्य करना पड़ता था। एक तरफ उन्हें मुगल बादशाहों की सेवा करनी पड़ती थी, तो दूसरी तरफ वह अपने राज्य का भी सर्वोच्च अधिशासक था। अपने राज्य के संदर्भ में वह मुगल सम्राट के प्रति जिम्मेदार ही नहीं था अपितु अपनी प्रजा के लिए वही सर्वोच्च अधिशासक बना रहा।

शासक की स्थिति

मारवाड़ का शासक, राज्य का वंश परम्परागत प्रधान होने के कारण राज्य के संस्थापक का सबसे नजदीक का वैध वंशज होता था। मारवाड़ के शासक को राठौड़ गौत्र के राजपूतों का प्रमुख स्वीकार किया जाता था, इस कारण वह समस्त मारवाड़ में श्रद्धा का पात्र होने के अतिरिक्त समीपवर्ती राठौड़ राज्यों बीकानेर, किशनगढ़, ईडर, रतलाम में आदर की दृष्टि से देखा जाता था। ज्येष्ठाधिकार के नियम इतनी अधिक कड़ाई से पालन किया जाता था कि गद्दी के दावेदार में शासक बनने की योग्यता के अत्यंत निम्न स्तर की योग्यता या क्षमता भी विवेचन करने का प्रयत्न किया गया। साथ ही राजकीय व ब्रिटिश नियंत्रण व प्रक्रियात्मक पक्षों का बोधगम्य शैली में विवेचन

स्वीकार्य थी। निःसंतान राजा को दत्तक पुत्र लेने की अनुमति थी लेकिन यह तभी संभव था जब मृत महाराजा की किसी महारानी के मरणोत्तर पुत्र होने की संभावना नहीं है। मानसिंह के गद्दी पर आसीन होने पर इस आधार पर सामंतों ने विरोध किया क्योंकि मृतक महाराजा भीमसिंह की रानी देरावरी गर्भवती थी और इस बात की सम्भावना थी कि उसके मरणोत्तर पुत्र ही उत्पन्न होगा।[4]

राज्य का सम्पूर्ण प्रशासनिक ढाँचा महाराजा के व्यक्तित्व के चारों ओर घूमता था। मारवाड़ के अधिकांश निवासी उसे दैवी प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करते थे। वह राज्य का सर्वोच्च प्रधान, सेना का सर्वोच्च सेनापति और सर्वोच्च प्रशासक भी था। विधान बनाने की सर्वोच्च शक्ति उसमें निहित थी। न्याय का आदि स्रोत होने के कारण वह व्यक्तिगत रूप से सभी अभियोगों का निर्णय करता था और सभी झगड़ों को तय करता था, उसको अपनी प्रजा का संरक्षक और पिता स्वीकार किया जाता था। अतएव उसकी शक्ति और अधिकार विस्तृत थे। राज्य में जनतांत्रिक पद्धति नहीं थी लेकिन महाराजा निरंकुश शासक की भाँति कार्य नहीं करता था, साथ ही वह अपने सामन्तों, महाजनों और पंचायतों को अप्रसन्न करने का साहस नहीं कर सकता था। 1808 ईस्वी में जालौर के चौधरियों ने "घरबाब लागत" में 25 प्रतिशत की छूट प्राप्त की[5] 14 अप्रैल, 1814 को जोधपुर, नागौर, सोजत, मेड़ता, जैतारण के लोगों ने शासक को 'घरगिनती लाग' में चार रूपये और 'हल लाग' में साढ़े चार रूपये की कमी करने पर विवश किया।[6] 1817 ईस्वी में बालोतरा, जालौर और शिव के किसानों पर प्रति घर आठ रूपये 'घरबाब' लाग देने का आदेश दिया लेकिन 1819 ईस्वी में नागौर के जाट महासभा के दबाब से 'घरबाब' लाग आठ रूपये से चार रूपये कर दी। इससे राजा पर पंचायतों, सामन्तों, ग्रामवासियों के दबाव का पता चलता है। सभी महत्त्वपूर्ण अवसरों पर राजा सामन्तों से परामर्श लेता था। अपने नाथ गुरूओं को जागीर देते समय मानसिंह को न केवल अपने प्रधान आउवा के ठाकुर बख्तावरसिंह की सहमति लेनी पड़ी वरन् सभी ताजीमी सरदारों, मुत्सद्दियों तथा विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों की भी सहमति प्राप्त करनी पड़ी। पोकरण का ठाकुर गर्व के साथ कहता था कि वह मारवाड़ का भाग्य अपनी तलवार की म्यान में लेकर चलता है।

अभिजात वर्ग

मारवाड़ में परस्पर अधिकार और अधीनस्थ की शृंखला महाराजा से लेकर निम्नतम जागीरदार तक श्रेणीकरण की प्रणाली के आधार पर निर्धारित थी। मारवाड़ राज्य का सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र मुख्यतः राठौड़ों की शाखाओं के वंशों में विभाजित था। बड़ी जागीरें राठौड़ों की शाखाओं के वंश परम्परागत प्रधानों के पास थी, अपनी जागीर के अंदर वे पूर्ण रूप से अपने अधिकारों का उपयोग करते थे। ये संख्या व शक्ति दोनों में अधिक थे। इसलिए मारवाड़ का राजनीतिक विधान जागीरदारों में भूमि वितरण के द्वारा बना था। इसिलए उपर्युक्त

जागीरदार, शासक (महाराजा) के साथ राज्य के शासन में साझेदारी का दावा करते थे। मारवाड़ के प्रमुख व्यक्ति तीन श्रेणियों में विभाजित थे – 1. शासक परिवार के लोग जिन्हें 'राजविस' कहते थे। 2. अभिजात वर्ग अथवा सामन्त तथा सरदार 3. महत्त्वपूर्ण अधिकारी अथवा मुत्सद्दी।

अभिजात वर्ग अर्थात् सरदारों की भी चार श्रेणियां थीं – 1. दस सरायतें – इसमें सभी राठौड़ थे (कुम्पावत, चम्पावत, जैतावत, करमसौत, मेड़तिया) वे दरबार में पहली पंक्ति में बैठते थे और उन्हें 'दोहरी ताजीम' (सरदार के दरबार में आने और जाने पर महाराजा उठकर खड़ा होता था) और 'हाथ का कुरब' (इस श्रेणी के सरदार के दरबार में आने पर महाराजा खड़ा हो जाता था, सरदार महाराजा के सामने अपनी तलवार रख देता था, झुकता था और महाराजा के वस्त्र का किनारा छूता था। महाराजा सरदार के कंधे पर हाथ लगाकर अपने हाथ को अपनी छाती तक ले जाते थे (बाँह पसाव)। इस प्रकार वह जागीरदार के अभिवादन को स्वीकार करता था। उन महाराजाओं के वंशज, जो राव जोधा (मुख्य गोत्र चम्पावत व कुम्पावत) के पूर्व हुए थे, दरबार में शासक की दाहिनी ओर बैठते थे और राव जोधा के वंशज, इसमें मेड़तिया (रियाँ, आलनियावास) उदावत (रायपुर, निमाज, रास) और जोधा (खरवा व भादराजन) थे। इनके अधीनस्थ पदसोपान में वे सरदार थे जिन्हें "हाथ का कुरब" का सम्मान प्राप्त था। इसमें राठौड़, गनायत तथा अन्य जातियां शामिल थीं इस श्रेणी के सरदार भी दो वर्गों में बंटे हुए थे –

1. एक वे जिन्हें दोहरी ताजीम मिली हुई थी।
2. दूसरे वे जिन्हें इकहरी ताजीम मिली हुई थी (इस श्रेणी के सरदार के दरबार में आने पर महाराजा खड़ा होता था, पर जाने पर खड़ा नहीं होता था)।

राज्य के संचालन के लिए जोधपुर में विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति की गई इनमें सबसे बड़ा अधिकारी प्रधान था।[7]

प्रधान

मारवाड़ का प्रधान राजा का मुख्य सलाहकार और सहायक होता था। यह पद वंशानुगत था। प्रधान राज्य का सर्वोच्च सैन्य पदाधिकारी भी था। राजा की सम्पूर्ण सेना का नेतृत्व प्रधान ही संभालता था। जोधपुर में आऊवा तथा बाद में पोकरण के ठाकुरों के लिए प्रधान पद निर्धारित था।

वेतन

वेतन के रूप में प्रधान को जागीर दी जाती थी परन्तु कभी–कभी नगद वेतन भी दिया जाता था।

प्रधान के कार्य

प्रधान का कार्य मुख्यतया राजनैतिक होता था। प्रधान का मुगल दरबार से भी सीधा सम्बन्ध होता था। किसी राज्य से समझौता सम्बन्धी कार्यवाही भी प्रधान ही करता था। राजपरिवार से संबंधित मामलों के कार्य भी प्रधान करता था।

नियुक्ति

नियुक्ति के अवसर पर राजा की ओर से प्रधान को घोड़ा और सिरोपाव (शासक द्वारा सिर से पैर तक पहिनने के पूरे वस्त्र देना) दिया जाता था। प्रधान राजा का बड़ा स्वामीभक्त और विश्वासपात्र होता था, फिर भी यदि कभी उस पर रिश्वत आदि का आरोप होता तो शासक उसे प्रधान पद से हटा देता था।

दीवान

जिस प्रकार मुगल शासन प्रणाली में शासकीय कार्यों का प्रधान दीवान था, उसी प्रकार जोधपुर राज्य में भी शासकीय कार्यों के लिए दीवान हुआ करता था। यह राज्य के कुशल प्रशासन के लिए उत्तरदायी था। दीवान का प्रमुख कर्त्तव्य राजा की अनुपस्थिति में राज्य के सभी कार्यों का संचालन और उसकी उपस्थिति में प्रमुख सलाहकार का कार्य निभाना था। यह सैनिक विभाग का नियन्त्रक भी था। राज्य का दीवान एक ऐसा व्यक्ति था जिसके पास राज्य के पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ–साथ असीम अधिकार भी थे। अतः कुशलापूर्वक कार्य करने के लिए यह आवश्यक था कि वह स्वयं प्रशासन के कुछ विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हो।[8]

दीवान के कार्य

दीवान परगनों के हाकिमों के कार्यों का पर्यवेक्षण करता था और राज्य का सर्वोच्च राजस्व अधिकारी होने के नाते 'हुजूर दफ्तर' का प्रशासन चलाता था। दीवान को शासक की दूसरी देह अर्थात् दूसरा शरीर माना जाता था। उसकी नियुक्ति के समय उसे महाराजा को एक अशर्फी और पाँच रूपये नजर (भेंट) में देने पड़ते थे और पाँच रूपये न्यौछावर करने पड़ते थे तथा राजा उसको एक गुलाबी अथवा केसरी रंग का दुपट्टा भेंट करता था जो 'दुपट्टा दीवान' कहलाता था।

दीवान के कार्यों में प्रमुख कार्य, शस्त्रागार विभाग की सही व्यवस्था करना, तोपों की देखभाल करना, बंदूकों व बख्तरों का प्रबन्ध करना, सभी मुख्य हथियारों की अलग–अलग व्यवस्था करना, राज्य में स्थित दुर्गों की व्यवस्था करना तथा वहां अधिकारियों की नियुक्ति करना, हजूरियों के कार्यों की व्यवस्था करना। वह जनता के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करता था तथा परिस्थितियों के अनुसार शासक से निवेदन कर 'कर वसूली' में रियायत भी करवा सकता था।

नियुक्ति तथा वेतन

साधारणतया महाराजा दीवान पद के लिए चुनाव करते समय पुराने मुत्सद्दियों के परिवारों को ही प्रमुखता देता था। राजा रायसिंह के समय तक इस पद को 'बच्छावत परिवार' के सदस्यों ने ही सुशोभित किया फिर क्रमशः बैद, मोहता, मूदड़ा आदि परिवारों के सदस्य मुख्य रूप से दीवान पद पर नियुक्त हुए।[9]

बख्शी

बख्शी शब्द पारसी शब्द बख्शीदान से बना है, जिसका अर्थ है 'देनेवाला' अतः यह लोगों को नौकरियां देता था इसलिए इसका नाम बख्शी पड़ा। मारवाड़ में महाराजा बख्तसिंह (1751–1752 ईस्वी) के राज्यकाल में "त्यागबख्शी" के पद का सृजन किया गया था जो मराठा आक्रमण के अवरोध और शत्रु के मुकाबले का ध्यान रखता था।

बख्शी की योग्यता

बख्शी में अनेक योग्यताओं का होना आवश्यक था। सैनिक गुणों के अतिरिक्त उससे घायल पशुओं का

उपचार करने, पशु संबंधित रोगों का निदान करने की अपेक्षा की जाती थी। घोड़ों की व्यवस्था भी वही करता था। वह सेना का निरीक्षण करता था तथा उसकी भर्ती पर नियंत्रण व अंकुश रखता था।[10] वह हिसाब–किताब का निरीक्षण करता था।

कार्य

बख्शी ने केवल सैनिकों की भर्ती, उनकी साज–सज्जा, अनुशासन व फौज के लिए उत्तरदायी था बल्कि उसे विभागीय कार्य भी देखने पड़ते थे। वह सेना को वेतन देता था तथा अधिकारियों की नियुक्ति, पद वृद्धि और पदावनती का विवरण रखता था।

मीर मुन्शी

इसका मुख्य कार्य उस विभाग का संचालन करना था जो पड़ौसी राजाओं, ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और राज्य के भीतर तथा बाहर की एजेंसियों से कूटनीतिक पत्र व्यवहार की देखभाल करता था। उसके इस कार्य में ढोलिया के कोठार का दरोगा तथा दरोगा दफ़्तरी सहायता करते थे। पड़ोसी राज्यों के दरबारों में अधिकारियों की नियुक्ति मीर मुन्शी की देखरेख में होता था।

हाकम

यह परगने का मुख्य प्रशासनिक, सैनिक और राजस्व अधिकारी होता था। परगना के अन्य सब अधिकारी और कर्मचारी उसके अधीन होते थे। परगने में शांति–व्यवस्था बनाए रखना परगना हाकिम का प्रमुख कर्त्तव्य था।[11]

तन–दीवान

साम्राज्य की सेवार्थ अधिकतर राजा को राज्य से बाहर रहना पड़ता था। अतः इस कारण तन–दीवान की नियुक्ति की जाती थी। यदि राजा स्वयं युद्धक्षेत्र में उपस्थित होता था तो 'तन दीवान' उसे परामर्श देता था।

तन दीवान के कार्य

तन दीवान का मुख्य कार्य वेतन सम्बन्धी कार्य था और वह जागीर का हिसाब भी रखता था। वह राजा का अत्यधिक विश्वास पात्र होता था।[12]

किलेदार

मध्ययुग में किले का विशेष महत्त्व होने के कारण, राज व्यवस्था में किलेदार अथवा दुर्गपाल का विशेष महत्त्व था। इस पर किलों की सुरक्षा की पूर्ण जिम्मेदारी होती थी। राजा अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्ति को ही किलेदार नियुक्त करता था।[13] अगर किलेदार कभी गद्दारी कर लेता था तो उस राजा का पतन हो जाता था। बाहरी आक्रमण के समय दुर्ग की रक्षा का पूरा दायित्व किलेदार पर होता था। इसके अधीन एक सैनिक टुकड़ी रहती थी।

साहणी

यह तबेले का मुख्य अधिकारी होता था। इसकी नियुक्ति, केन्द्र के तबेलों में होती थी क्योंकि राठौड़ सेना में घुड़सवार सेना का सदैव महत्त्व रहा था। इसी कारण तबेले के अधिकारी के रूप में साहणी की नियुक्ति होती थी। यह घोड़ों की खरीद, उसके निरीक्षण व विभाग से संबंधित सभी समस्याओं का दायित्व संभालता था। वह 'वारगीर' घुड़सवारों को घोड़े प्रदान करता था। यह पद भी वंशानुगत रूप से हजूरियों में राजपूत परिहारों के पास रहा जिसकी स्थायी जागीर बेलासर गाँव में थी।[14]

फौजदार

शुतुरखाना, तोपखाना, पीलखाना व सिलहखाना का मुख्य विभागीय प्रशासनिक अधिकारी फौजदार कहलाता था। जो अपने विभाग से सम्बन्धित खरीद, निरीक्षण व वस्तुओं के प्रबन्ध की व्यवस्था करते थे। तोपखाने का फौजदार नई तोपों के निर्माण तथा बारूद का प्रबन्ध करता था।[15] शस्त्रागार का फौजदार विभिन्न शस्त्रों का संग्रह तथा उसकी आपूर्ति की व्यवस्था करता था।[16] इसके साथ रथखाना भी इसके अधीन रहता था।[17]

ड्योढ़ीदार

ड्योढ़ीदार भी किलेदार के समान ही महत्त्वपूर्ण होते थे। वे महल की चौकसी करते थे और आगन्तुकों को महाराजा से मिलाते थे।

पुरोहित

पुरोहित केवल राज्य के धार्मिक उत्सवों और समारोहों की ही देखभाल नहीं करता था वरन् उसके बहुधा राज्य के महत्त्वपूर्ण संदेशों को लेकर पड़ोसी राज्यों में जाना पड़ता था।[18]

कोतवाल

जनता में सबसे अधिक प्रभावशाली और सम्मानित अधिकारी था क्योंकि जनता के जानमाल की रक्षा के लिए जिम्मेदार था, नगर की चौकसी और पहरे का सारा प्रबन्ध करता था और नगर की चाबियाँ अपने पास रखता था। उसका अपना कार्यालय कोतवाली के चबूतरे पर था, वह सड़कों पर रात्रि को गश्त लगवाता था, अपराधियों को दण्ड देता था, कानून और व्यवस्था का संचालन करता था और गुप्त रूप से किले में खाद्य सामग्री पहुँचाता था। सिंघवी बहादुरमल ने 1806–07 ईस्वी में नगर की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति दी और उसके उत्तराधिकारी गोपालदास ने भी 1807 ईस्वी में जोधपुर के घेरे के समय उसकी नीति चातुर्य से नगर को लुटने से बचा लिया।

इन विभागों के अतिरिक्त राज्य में बहुत से अन्य विभाग थे, साथ ही राज्य में बड़ी संख्या में कारखाने भी विद्यमान थे जिनके नाम ये थे – जरगार कारखाना, जवाहरखाना, दवाखाना, तातेड़खाना, खासा रसोड़ा, अबदारखाना, जेलखाना, फर्राशखाना, बागों का कोठार, कपड़ों का कोठार, सिलहखाना, गऊखाना, कबूतरखाना, शिकारखाना, तालीमखाना, नक्कारखाना, पेशेखाना व सुतारखाना, ये कारखाने दो समूहों में विभाजित किए जा सकते थे। एक समूह में वे कारखाने आते हैं जो मुख्यतः महाराजा के परिवार के लिए कार्य करते थे। दूसरे समूह में वे कारखाने आते हैं जो शासक के साथ–साथ प्रशासन की भी सेवा करते थे और जनता के कल्याण का भी कार्य करते थे।[19]

कानून और न्याय

मारवाड़ में उस समय कोई पृथक न्यायपालिका अथवा न्यायिक अदालत नहीं थी। लोगों को परगनों में हाकिम के पास अपनी शिकायतें लेकर जाना पड़ता था, उसके निर्णय से असंतुष्ट होने पर, दीवान के पास जा सकते थे, यदि दीवान के निर्णय से भी असंतुष्ट हैं तो

लोग शासक से न्याय प्रदान करने के लिए प्रार्थना कर सकती थे, परंतु वैधानिक प्रावधानों से नियंत्रित कोई निश्चित कार्यप्रणाली प्रचलन में नहीं थी। प्रथम बार महाराजा मानसिंह के राजत्वकाल में हाकिमों के निर्णयों की जाँच करने के लिए एक पृथक अदालत स्थापित की गई थी। इस अदालत में दो अन्य अधिकारी थे और एक पृथक विभाग था जिसे 'खटदर्शन' (षट्दर्शन) कहते थे, जो चारणों और पुरोहितों के अभियोगों का निर्णय करता था। 1839 ईस्वी में सूरसागर पर दो अदालतें मानसिंह ने स्थापित कीं, एक दीवानी के अभियोगों के लिए और दूसरी फौजदारी के अभियोगों के लिए, 1843 ईस्वी में इन दोनों अदालतों को ड्यौढ़ी में स्थान परिवर्तन कर दिया और एक पृथक 'अपील अदालत' भी महाराजा तख्तसिंह के राजत्वकाल में स्थापित कर दी गई।[20]

शासक अपीलों को सुनता था। वह उनका निर्णय चार न्यायाधीशों, दीवान और बख्शी की सहायता से करता था, जिला स्तर पर न्याय प्रशासन हाकिमों द्वारा कारकुन और इजलास नवीस की सहायता से किया जाता था। जिलों, नगरों, कस्बों में कोतवाल न्याय करता था। कोतवाल को न्याय प्रशासन में इजलास नवीस सहायता देता था। इन जिला अदालतों के निर्णय के विरूद्ध अपील जोधपुर अदालत में की जा सकती थी। संन्यासियों पर अपराध सिद्ध होने पर उन पर मुकदमों के लिए पृथक व्यवस्था थी। उनका अभियोग, एक विशेष अदालत सुनती थी, जिसका अध्यक्ष पुरोहित होता था।

पुरोहित की सहायता, राजधानी स्थित चार न्यायधीश करते थे। नाथों के अभियोग की सुनवाई महामंदिर के आयसजी करते थे। जागीरदारों को भी न्यायिक अधिकार थे परन्तु उनके निर्णय के विरूद्ध अपील जोधपुर अदालत में की जा सकती थी। किले में एक 'सलेमकोट' था जिसमें राजनीतिक कैदी रखे जाते थे।[21]

परगना प्रशासन (जिला प्रशासन हकूमत)

महाराजा मानसिंह के काल में मारवाड़ तेईस परगनों में विभाजित था। परगने का सम्पूर्ण प्रशासन हाकिम देखता था, जिसकी नियुक्ति महाराजा दीवान की सलाह से करता था। हाकिम न्यायिक व गैर न्यायिक दोनों कार्य करता था। परगनों के निवासियों की प्रारंभिक सुनवाई हाकिम करता था। गैर न्यायिक में वह सैनिक कार्य, कोषाध्यक्ष, मालगुजारी की वसूली, जिला भंडार पर नियंत्रण रखता था। हाकिम, परगने के मुख्यालय पर रहता था। कुछ बड़े परगनों में हाकिम की सहायता के लिए नायब हाकिम होता था। प्रत्येक हुकूमत के दफ्तर में एक खजाने का पोतदार होता था और बड़े खजानों में उसका एक सहायक भी होता था। हाकिम के पास निश्चित संख्या में लिपिक तथा कागज पहुँचाने वाले ऊँट–सवार होते थे। 1823 ईस्वी में जालौर के हाकिम भंडारी पृथ्वीराज को मानसिंह ने सिरोही पर चढ़ाई करने का आदेश दिया था।[22] इस प्रकार हाकिम के पास विस्तृत अधिकार थे तथा राज्य का नियंत्रण केवल नाममात्र का था।

पंचायत प्रशासन

मारवाड़ में मुस्लिम आगमन से पूर्व स्थानीय प्रशासन के संचालन के लिए नगरों में 'महाजन' तथा ग्रामों में 'पंचकुल'[23] विद्यमान थे। ये स्थानीय करों की वसूली, व्यापार पर नियंत्रण रखना, लोगों के जान–माल की सुरक्षा करना तथा सामाजिक तथा राजनीतिक महत्त्व के उन मामलों को तय करते थे जो समस्त समुदाय को प्रभावित करने वाले होते थे। वे सामाजिक और व्यवहार संबंधी अनेक झगड़ों का पंच निर्णय करते थे और शांतिपूर्वक व बिना आत्म प्रदर्शन के लिए सरकार के बहुत से कार्य करते थे।

मुस्लिम आक्रमणों तथा उनके प्रभुत्वकाल में स्थानीय प्रशासन अपनी आभा खोने लगा और वे कालान्तर में महत्त्वहीन संस्थाएं बन गई। 1756 ईस्वी में मराठों द्वारा अजमेर अधिकार करने से लेकर 1818 ईस्वी तक अंग्रेज आगमन तक मारवाड़ में सम्पूर्ण नागरिक प्रशासन अस्तव्यस्त हो गया। अतः ग्रामीण समुदाय ने पंचायतों को पुनः पुनर्जीवित किया तथा कालान्तर में वे ग्रामीण जीवन का अभिन्न अंग बनकर उन पर अमिट छाप छोड़ी।

ये ग्रामीण संस्थाएं गांव की रक्षा, ग्रामीण जनता के जानमाल की रक्षा, व्यापार पर नियंत्रण और न्याय की व्यवस्था करती थी।[24] महाराजा मानसिंह के काल तक अधिकांश स्थानीय प्रशासन इन संस्थाओं के हाथ में था क्योंकि हाकिमों और उनके अधीन कर्मचारियों के पास काम का आधिक्य होने से ग्रामीण प्रशासन पर निगरानी व नियंत्रण नहीं रख पाते थे इसलिए समस्त कार्य पंचायतें करने लगी। ग्रामीणों पर दोहरा नियंत्रण था, एक जाति पंचायत का और दूसरा ग्राम पंचायत का। सामान्यतः पंचायत, व्यापार, नैतिकता तथा धर्म संबंधी सभी प्रश्नों को ले सकती थी। कभी–कभी वह अपनी जाति के लोगों को परम्परागत पेशों से कम प्रतिष्ठा वाले पेशों को करने की आज्ञा नहीं देती थी।

व्यापार व उद्योगों के लिए 'पेशेवर संघ' भी बने हुए थे जो स्वयं के व्यापार व उद्योगों से संबंधित नियम बनाते थे तथा नियमों व आदेशों का पालन नहीं करने पर अर्थदण्ड देने का अधिकार रखते थे उदाहरणार्थ जोधपुर के हलवाइयों ने उन सभी हलवाइयों में से प्रत्येक पर 51 रूपये जुर्माना किया जिन्होंने 1835 ईस्वी में 'कंदोइयों की लाग' के विरूद्ध अपनी दुकानें बंद नहीं की थी।[25] इन जनप्रिय संस्थाओं के पास कोई प्रशासनिक, राजनीतिक अधिकार नहीं थे, लेकिन जनता का बहुत बड़ा बहुमत अपनी शिकायतों और कठिनाइयों को दूर करने के लिए राज्य प्रशासन की ओर न देखकर उनकी ओर देखता था।[26]

मारवाड़ के प्रशासन पर भौगोलिक प्रभाव व मुगलों की अधीनता ने इस राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित किया है। 1818 ईस्वी में ब्रिटिश अधीनता ने भी प्रशासन पर आमूलचूल परिवर्तन किये लेकिन मारवाड़ की प्रशासनिक व्यवस्था मूल रूप से भारतीय ही बनी रही।

सम्पूर्ण प्रशासनतंत्र महाराजा व पट्टेदारी व्यवस्था पर आधारित था। मारवाड़ नरेशों का सम्पर्क मुगलों से होने के उपरान्त अपने राज्य में मुगल प्रशासन के कतिपय पदों के नाम उनके अनुसार प्रचलित किये और कई नए विभागों का सृजन भी किया। 1843 ईस्वी तक मारवाड़

का प्रशासन मध्यकालीन परम्पराओं व पुरातन पद्धतियों से चलता रहा। इन परम्परागत व्यवस्थाओं को सुशासन का नया जामा पहिनाने का श्रेय का ढोंग रचने का अवसर ब्रिटिश सत्ता को 1818 ईस्वी की सन्धि ने सुलभ करा दिया। ब्रिटिश संरक्षण पाने के उपरांत राठौड़ नरेशों की निरंकुशता बढ़ने लगी और वे जनहित की उपेक्षा करने लगे। राजपद की गरिमा पतोन्मुख होने लगी। अंग्रेजों ने मारवाड़ राज्य की गरिमा को धराशायी कर शीघ्र ही अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर ली। पंचकुल व जातिय पंचायत किसी हद तक ग्रामों में निष्पक्ष न्याय देने में सहयोगी के रूप में कार्यरत रही। कालांतर में प्राचीन व मध्ययुगीन राठौड़ों के शौर्य का युग शोषण के युग में बदल गया।

सन्दर्भ

1. *टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, द्वितीय खण्ड, 2015, पृ. 301*
2. *राणावत, मनोहरसिंह, मुंहणोत नैणसी और उनके इतिहास ग्रन्थ, शिवलाल अग्रवाल, आगरा, 1960, पृ. 254*
3. *देवड़ा, जी.एस.एल., राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था (1574–1818 ईस्वी), धरती प्रकाशन, बीकानेर, 1981, पृ. 96*
4. *टॉड, कर्नल जेम्स, पूर्वोक्त, पृ. 205*
5. *हकीकत बही जोधपुर (वि.सं. 1862–70) संख्या 9 एफ 124, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
6. *वही, संख्या 9 एफ 483*
7. *शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान स्टडीज, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1970, पृ. 68–79*
8. *शर्मा, गोपीनाथ, पूर्वोक्त, पृ. 68–79*
9. *शर्मा, गोपीनाथ, पूर्वोक्त, पृ. 68–79*
10. *देवड़ा, जी.एस.एल., पूर्वोक्त, पृ. 115*
11. *राणावत मनोहरसिंह, पूर्वोक्त, पृ. 192*
12. *देवड़ा, जी.एस.एल., पूर्वोक्त, पृ. 105*
13. *हकीकत बही जोधपुर (वि.सं. 1862–70) संख्या 9 एफ 41–44, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
14. *बही तबेला खरचा, वि.सं. 1754, पृ. 234, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
15. *कागदों की बही, वि.स. 1827, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
16. *कागदों की बही, वि.स. 1827, पृ. 11, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
17. *हथियारे तुलादान री बही, वि.सं. 1827, पृ. 201, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
18. *मानसिंह का गोमाजी सिंधिया को खरीता, वि.सं. 1868, हकीकत बही जोधपुर, संख्या 9, वि.सं. 1862–1870, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
19. *मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (1883–84 ईस्वी), पृ. 608, 609, 772, 777, जोधपुर राज्य प्रकाशन, जोधपुर, 1942*
20. *मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (1883–84 ईस्वी), पूर्वोक्त, पृ. 687*
21. *हकीकत बही जोधपुर, वि.सं. 1862–70, संख्या 9 एफ 81, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
22. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, राजपूताने का इतिहास, खण्ड चतुर्थ, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014, पृ. 840*
23. *शर्मा, गोपीनाथ, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, ग्रन्थ भारती, जयपुर, 1994, पृ. 234–235*
24. *शर्मा, गोपीनाथ, पूर्वोक्त*
25. *शर्मा, पद्मजा, जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल (1803–1843 ईस्वी सन्) , 1974, पृ. 171–200, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर*
26. *परिहार, जी.आर., मराठा–मारवाड़ सम्बन्ध (1724–1843 ईस्वी), 1984, पृ. 111–126, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर*